IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 30, Issue 2, Series 2 (February, 2025) 76-83
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

गीता और पतंजलि योगसूत्र की शिक्षाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव

अतुल कुमार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सारांश

यह शोधपत्र "गीता और पतंजलि योगसूत्र की शिक्षाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव" विषय पर केंद्रित है, जिसमें भारतीय दार्शनिक परंपरा के दो प्रमुख ग्रंथों – भगवद्गीता और पतंजलि योगसूत्र – की शिक्षाओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह है कि इन ग्रंथों में निहित सिद्धांत व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास में कैसे सहायक होते हैं। गीता कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के माध्यम से जीवन में संतुलन और कर्तव्यबोध की भावना को उत्पन्न करती है, जबकि पतंजलि योगसूत्र अष्टांग योग के माध्यम से चित्तशुद्धि, आत्मनियंत्रण और आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाता है। यह शोध दर्शाता है कि इन दोनों ग्रंथों की शिक्षाएँ समन्वित रूप से अपनाकर व्यक्तित्व के समग्र विकास को संभव बनाया जा सकता है।

भूमिका

मनुष्य के जीवन में व्यक्तित्व एक बहुआयामी संकल्पना है, जो न केवल उसकी शारीरिक आकृति और व्यवहार से संबंधित होती है, अपितु उसकी मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक परिपक्वता का भी दर्पण होती है। वर्तमान समय में जहाँ पाश्चात्य मनोविज्ञान व्यक्तित्व को मापन योग्य विशेषताओं और व्यवहारिक प्रवृत्तियों के रूप में देखता है, वहीं भारतीय दर्शन इस संकल्पना को आत्मा, चित्त और संस्कारों के संदर्भ में अधिक व्यापकता प्रदान करता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में **भगवद्गीता** और **पतंजलि के योगसूत्र** दो ऐसे प्रमुख ग्रंथ हैं जो न केवल आत्मविकास की दिशा दिखाते हैं, बल्कि संपूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में भी मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। भगवद्गीता का मुख्य उद्देश्य जीवन के संघर्षों में स्थिरता, आत्मबोध और कर्तव्यपरायणता की भावना उत्पन्न करना है, जबकि योगसूत्र आत्मसंयम, चित्तशुद्धि और समाधि के माध्यम से आंतरिक संतुलन व जागरूकता विकसित करने का मार्ग प्रस्तुत करता है।

गीता के 'स्थितप्रज्ञ' की संकल्पना और योगसूत्र के 'अष्टांगयोग' की प्रणाली, दोनों व्यक्ति को अपनी अंत:प्रकृति के साथ साक्षात्कार कराते हैं। इन दोनों ग्रंथों की शिक्षाएँ केवल आध्यात्मिक मुक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि वे जीवन की प्रत्येक अवस्था में व्यक्तित्व के उत्थान और संतुलन की बात करती हैं।

इस शोधपत्र का उद्देश्य गीता और पतंजलि योगसूत्र में वर्णित शिक्षाओं के माध्यम से यह विश्लेषण करना है कि वे किस प्रकार एक समग्र, संतुलित और सशक्त व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। यह अध्ययन विशेष रूप से उन आंतरिक गुणों पर केंद्रित रहेगा जो इन ग्रंथों के माध्यम से आत्मसात किए जा सकते हैं, जैसे—दृढ़ निश्चय, विवेक, संयम, ध्यान, भक्ति, और कर्तव्यबोध।

व्यक्तित्व विकास की अवधारणा

"व्यक्तित्व" शब्द संस्कृत के "प्राकृतित्व" या "प्रकृति" शब्द से निकला है, जिसका तात्पर्य है–मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, भावनाओं और विचारों का समष्टिगत रूप। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार, व्यक्तित्व वह विशेष गुणों, व्यवहारों, अभिवृत्तियों और सोच की स्थायी संरचना है, जो एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न बनाती है।[1] जबकि भारतीय दर्शन

[1] Feist, J., Feist, G. J., & Roberts, T.-A. (2017). Theories of Personality (9th ed.). McGraw-Hill Education.

यह एक बहुस्तरीय अवधारणा है, जिसमें देह, मन, बुद्धि, आत्मा और संस्कार–इन सभी की सम्मिलित भूमिका मानी गई है।[2]

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो द्वारा प्रस्तावित **आवश्यकताओं के अनुक्रम सिद्धांत** (Hierarchy of Needs) के अनुसार, आत्म-साक्षात्कार (Self-actualization) किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास की सर्वोच्च अवस्था मानी जाती है।[3] यह धारणा भारतीय दर्शन में भी गहराई से निहित है, जहाँ 'आत्मा के बोध' को व्यक्तित्व की परिपक्वता का चरम माना गया है।[4]

भारतीय चिंतन परंपरा में "व्यक्तित्व विकास" केवल बाह्य व्यवहार या सामाजिक छवि तक सीमित नहीं है, अपितु यह आंतरिक शुद्धता (चित्तशुद्धि), संयम, सत्संकल्प और आत्मानुभूति जैसे गुणों के माध्यम से जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया है।[5] भगवद्गीता में कहा गया है – *"उद्धरेदात्मनाऽत्मानं"* – अर्थात्, व्यक्ति स्वयं के द्वारा स्वयं का उद्धार करे, यह वक्तव्य आत्मनिर्भरता और आत्म-विकास की दिशा में स्पष्ट संकेत देता है।[6]

इसी प्रकार, योगदर्शन में चित्तवृत्तियों की निरोध की प्रक्रिया ही वास्तविक व्यक्तित्व शुद्धि का मार्ग मानी गई है। पतंजलि के अनुसार – *"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"*, अर्थात् योग चित्त की वृत्तियों का नियंत्रण है।[7] यह नियंत्रण व्यक्ति को केवल मानसिक शांति ही नहीं देता, अपितु उसे स्थिरता, विवेक और आत्म-जागरूकता की ओर भी प्रेरित करता है।[8]

---

[2] शर्मा, आर. (2012). भारतीय मनोविज्ञान: एक आधारभूत परिचय. वाराणसी: चौखंबा प्रकाशन।

[3] Maslow, A. H. (1943). A Theory of Human Motivation. Psychological Review, 50(4), 370-396.

[4] Radhakrishnan, S. (1929). Indian Philosophy (Vol. 2). Oxford University Press.

[5] Vivekananda, S. (1989). Complete Works of Swami Vivekananda (Vol. 4). Advaita Ashrama.

[6] भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 5।

[7] पतंजलि योगसूत्र, 1.2।

[8] Saraswati, S. (2001). Four Chapters on Freedom: Commentary on the Yoga Sutras of Patanjali. Yoga Publications Trust.

इस प्रकार, व्यक्तित्व विकास की अवधारणा को यदि हम भारतीय और पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों से समझें, तो स्पष्ट होता है कि जहाँ पाश्चात्य विचारधारा व्यक्तित्व को बाह्य स्वरूप से देखती है, वहीं भारतीय दर्शन उसकी आंतरिक गहराई में उतरता है।

गीता में व्यक्तित्व विकास की शिक्षाएँ

भगवद्गीता भारतीय चिंतन की एक कालजयी कृति है, जो न केवल आध्यात्मिक उन्नयन का मार्गदर्शन करती है, बल्कि जीवन की जटिलताओं से जूझ रहे व्यक्ति को मानसिक, नैतिक एवं आत्मिक स्तर पर सशक्त बनने की प्रेरणा भी देती है। यह ग्रंथ अर्जुन के मोह, भ्रम और मानसिक असंतुलन की स्थिति में दिया गया वह उपदेश है, जो समस्त मानवता के लिए व्यवहारिक दर्शन बन गया।[9]

गीता के अनुसार, स्थिर और संतुलित चित्त वाला व्यक्ति ही वास्तविक अर्थों में परिपक्व व्यक्तित्व का धनी होता है। इसे *स्थितप्रज्ञ* की संज्ञा दी गई है, जिसकी पहचान यह है कि वह सुख-दुख, मान-अपमान, जय-पराजय आदि द्वंद्वों में समभाव बनाए रखता है।[10] यह समत्व ही गीता के व्यक्तित्व विकास दर्शन की केंद्रीय धुरी है – "समत्वं योग उच्यते"।[11]

गीता आत्मबोध और कर्तव्यबोध को व्यक्तित्व विकास के आवश्यक तत्व मानती है। व्यक्ति को स्वधर्म के अनुसार कर्म करते हुए निष्काम भाव अपनाने की शिक्षा दी जाती है — "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"।[12] यह सिद्धांत व्यक्ति को संलग्न रहते हुए भी परिणाम के मोह से मुक्त रखता है, जिससे उसका मनोबल एवं आत्मविश्वास बना रहता है।

[9] Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavadgita: With an Introductory Essay, Sanskrit Text, English Translation and Notes. HarperCollins.

[10] भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 56-57।

[11] भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 48।

[12] भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 47।

गीता में तीन गुणों सत्त्व, रजस और तमस का विश्लेषण करते हुए बताया गया है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व इन गुणों के प्रभाव में ही निर्मित होता है।[13] सत्त्वगुण को उच्चतम विकास की अवस्था माना गया है, जिसमें विवेक, शांति, करुणा, संयम जैसे गुण प्रकट होते हैं। गीता कहती है कि व्यक्ति को आत्मनियंत्रण, इंद्रियसंयम और समर्पण के माध्यम से सत्त्वगुण की ओर बढ़ना चाहिए।[14]

एक और महत्वपूर्ण पक्ष है – *योगस्थता* । गीता का 'योग' केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन की अवस्था है। इस योग के माध्यम से व्यक्ति आंतरिक द्वंद्वों को शांत कर स्थायी आत्मबल प्राप्त करता है।[15] अतः गीता में व्यक्तित्व विकास आत्मा के बोध, चित्त की स्थिरता, कर्तव्य परायणता, विवेक और संतुलन पर आधारित है।

पतंजलि योगसूत्र में व्यक्तित्व विकास की दृष्टि

पतंजलि योगसूत्र भारतीय योग दर्शन का मूल ग्रंथ है, जिसमें आत्म-नियंत्रण, चित्तशुद्धि और आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से समग्र व्यक्तित्व विकास की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। पतंजलि का व्यक्तित्व विकास का दृष्टिकोण मनुष्य के भीतर छिपी चेतना को जाग्रत करने की प्रक्रिया है, न कि केवल सामाजिक छवि का निर्माण।[16]

पतंजलि के अनुसार – *"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"* – अर्थात् योग का उद्देश्य चित्त की वृत्तियों को नियंत्रित करना है।[17] जब चित्त शांत होता है, तब व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होता है। यह अवस्था – *"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"* – आत्म-साक्षात्कार की स्थिति

[13] भगवद्गीता, अध्याय 14, श्लोक 5।

[14] Chinmayananda, S. (1992). The Holy Geeta. Central Chinmaya Mission Trust.

[15] Bhaktivedanta Swami Prabhupada, A. C. (1986). Bhagavad-Gita As It Is. Bhaktivedanta Book Trust.

[16] Saraswati, S. (2001). Four Chapters on Freedom: Commentary on the Yoga Sutras of Patanjali. Yoga Publications Trust.

[17] पतंजलि योगसूत्र, 1.2

है।[18] यही अवस्था मानसिक संतुलन, आत्म-नियंत्रण और आत्मविश्वास को जन्म देती है, जो व्यक्तित्व की आधारभूत विशेषताएँ हैं।

पतंजलि द्वारा प्रस्तुत **अष्टांग योग** – (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) – एक ऐसा क्रमबद्ध मार्ग है, जो व्यक्तित्व को शुद्ध करने के साथ-साथ उसे उच्चतम आत्मिक स्तर तक ले जाता है।[19] यम और नियम सामाजिक और व्यक्तिगत अनुशासन स्थापित करते हैं, जिससे व्यक्तित्व में नैतिक मूल्यों की स्थापना होती है।[20]

यमों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ऐसे गुण हैं, जो व्यक्ति को सामाजिक रूप से संतुलित और भावनात्मक रूप से संयमित बनाते हैं।[21] वहीं नियमों में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान व्यक्ति के भीतर आंतरिक अनुशासन, आत्मनिरीक्षण और आध्यात्मिक झुकाव का विकास करते हैं।[22]

प्रत्याहार, धारणा और ध्यान चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर अंतर्मुखी बनाते हैं, जिससे व्यक्ति आत्मचिंतन, आत्मबोध और मानसिक स्थिरता प्राप्त करता है।[23] यह आंतरिक यात्रा उसे केवल बाह्य सफलता तक नहीं ले जाती, बल्कि आत्मसंतोष, स्पष्ट दृष्टिकोण और विवेक के उच्च स्तर तक पहुँचाती है। अंततः, समाधि की अवस्था में व्यक्ति पूर्णतः जागरूक, केंद्रित और निर्विकारी हो जाता है। यह वह स्थिति है जहाँ आत्मा और चित्त एकरूप हो जाते हैं – और व्यक्ति का व्यक्तित्व आत्मिक शांति, स्थिरता एवं दिव्यता से ओतप्रोत हो जाता है।[24]

---

[18] पतंजलि योगसूत्र, 1.3

[19] Iyengar, B. K. S. (2002). Light on the Yoga Sutras of Patanjali. Thorsons.

[20] Vivekananda, S. (1989). Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. 1. Advaita Ashrama.

[21] पतंजलि योगसूत्र, 2.30

[22] पतंजलि योगसूत्र, 2.32

[23] Bryant, E. F. (2009). The Yoga Sutras of Patanjali: A New Edition, Translation and Commentary. North Point Press.

[24] पतंजलि योगसूत्र, 3.3

इस प्रकार, पतंजलि योगसूत्र व्यक्ति को केवल शारीरिक स्वास्थ्य नहीं, बल्कि मानसिक दृढ़ता, नैतिक आचरण, और आध्यात्मिक उन्नयन प्रदान करते हैं – जो व्यक्तित्व विकास की पूर्णता का परिचायक है।

गीता और पतंजलि योगसूत्र की शिक्षाओं का तुलनात्मक विश्लेषण

भगवद्गीता और **पतंजलि योगसूत्र**, दोनों ही ग्रंथ भारतीय दार्शनिक परंपरा के अमूल्य स्तंभ हैं। यद्यपि इन दोनों की प्रस्तुत शैली, उद्देश्य और भाषा में अंतर है, फिर भी इनकी शिक्षाएँ अंततः व्यक्ति को आत्मबोध, संतुलन और आत्म-विकास की ओर प्रेरित करती हैं। इन दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक विश्लेषण हमें यह स्पष्ट करता है कि व्यक्तित्व विकास के लिए क्या तत्व आवश्यक हैं और कैसे इनका संतुलन जीवन को उन्नत बनाता है।[25]

1. व्यक्तित्व का आधार:

गीता में व्यक्तित्व का आधार *कर्तव्यबोध* और *आत्मबोध* है, जबकि योगसूत्र में यह *चित्तवृत्तियों का निरोध* और *आत्मसाक्षात्कार* है।[26] गीता जीवन के संघर्षों में सक्रिय रहते हुए संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देती है, वहीं योगसूत्र अंतर्मुखी होकर चित्त को स्थिर करने पर बल देता है।[27]

2. मार्ग की शैली:

गीता कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग को समन्वित करके जीवन में संतुलन की बात करती है, जबकि पतंजलि योगसूत्र अष्टांग योग के माध्यम से क्रमबद्ध साधना का पथ

---

[25] Radhakrishnan, S. (1948). The Bhagavadgita: With Introductory Essay and Commentary. HarperCollins.

[26] पतंजलि योगसूत्र, 1.2; भगवद्गीता, 2.47।

[27] Bryant, E. F. (2009). The Yoga Sutras of Patanjali. North Point Press.

खाता है।[28] गीता बहिर्मुखी जीवन की चुनौती के मध्य समाधान प्रस्तुत करती है, और योगसूत्र अंतर्मुखी साधना का विधान है।[29]

3. आत्मसंयम और नैतिकता:

दोनों ग्रंथ आत्मसंयम को अत्यंत आवश्यक मानते हैं। गीता में *इंद्रियनिग्रह* (इंद्रियों का संयम) को स्थितप्रज्ञ की पहचान बताया गया है[30], जबकि योगसूत्र में *यम-नियम* के माध्यम से नैतिक अनुशासन की स्थापना की जाती है।[31]

4. ध्यान और स्थिरता:

जहाँ गीता ध्यान को एक साधन के रूप में प्रस्तुत करती है – *"युञ्जन्नेवं सदा आत्मानं योगी नियतमानसः"[32], वहीं योगसूत्र ध्यान (धारणा, ध्यान, समाधि) को साधक की प्रमुख अवस्था के रूप में देखता है, जिससे चित्त शुद्ध होता है।[33]

5. लक्ष्य की समानता:

दोनों ग्रंथों का अंतिम लक्ष्य *आत्म-प्राप्ति* या *मुक्ति* है। गीता इसे भगवद्भक्ति और आत्मसमर्पण द्वारा प्राप्त करने की बात करती है – "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"[34]; योगसूत्र इसे *कैवल्य* – चित्त और पुरुष के पृथक्करण – के रूप में परिभाषित करता है।[35]

---

[28] Chinmayananda, S. (1992). The Holy Geeta. Central Chinmaya Mission Trust.
[29] Saraswati, S. (2001). Four Chapters on Freedom. Yoga Publications Trust.
[30] भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 58
[31] पतंजलि योगसूत्र, 2.30-32
[32] भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 10-12
[33] पतंजलि योगसूत्र, 3.1-3
[34] भगवद्गीता, अध्याय 18, श्लोक 66
[35] पतंजलि योगसूत्र, 4.34

सार रूप में:-

तत्व	भगवद्गीता	पतंजलि योगसूत्र
दृष्टिकोण	जीवन के संघर्षों में स्थिरता	अंतर्मुखीसाधनाएवं आत्मसाक्षात्कार
मूल साधन	कर्म, भक्ति, ज्ञान	अष्टांग योग
नैतिक अनुशासन	स्वधर्म, इंद्रियनिग्रह	यम-नियम
चित्त नियंत्रण	समत्व, स्थितप्रज्ञता	चित्तवृतिनिरोध
अंतिम लक्ष्य	ईश्वरप्राप्ति	कैवल्य (मोक्ष)

यह स्पष्ट है कि गीता और योगसूत्र दोनों ही ग्रंथ व्यक्ति को एक समग्र, संतुलित और आत्मनिष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। जहाँ गीता बाह्य संसार में रहते हुए संतुलन की बात करती है, वहीं योगसूत्र आत्मचिंतन और साधना के माध्यम से चित्त की शुद्धि का मार्ग दिखाता है। दोनों की संयुक्त दृष्टि व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को ऊर्जस्वित और दिव्य बना सकती है।

निष्कर्ष

"गीता और पतंजलि योगसूत्र की शिक्षाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव" विषयक इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन केवल आत्मिक या आध्यात्मिक उन्नयन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक जीवन में भी व्यक्तित्व निर्माण के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है। गीता और योगसूत्र, दोनों ही ग्रंथ आत्म-विकास की उस प्रक्रिया को उजागर करते हैं, जो व्यक्ति को आत्म-विश्वासी, नैतिक, मानसिक रूप से संतुलित और अंततः आध्यात्मिक रूप से परिपक्व बनाती है।

गीता व्यक्ति को कर्मयोग, भक्ति और ज्ञान के माध्यम से संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देती है। यह व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, बिना फल की आकांक्षा के, समभाव बनाए रखने की शिक्षा देती है। दूसरी ओर, पतंजलि योगसूत्र व्यक्ति को चित्तशुद्धि, इंद्रियनिग्रह और समाधि के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाता है।

दोनों ग्रंथों में अंततः आत्मा की खोज, आंतरिक स्थिरता, और सार्वभौमिक चेतना से जुड़ने की भावना निहित है। गीता का स्थितप्रज्ञ और योगसूत्र का समाधिस्थ योगी – दोनों ही आदर्श व्यक्तित्व के प्रतिरूप हैं, जो बाह्य और आंतरिक जीवन में संतुलन स्थापित करते हैं।

यह अध्ययन बताता है कि यदि गीता और योगसूत्र की शिक्षाओं को समन्वित रूप से अपनाया जाए, तो व्यक्ति का विकास केवल बौद्धिक या सामाजिक स्तर पर नहीं, बल्कि मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर होता है। आज की भागदौड़ और तनावपूर्ण जीवनशैली में इन शिक्षाओं की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि गीता और पतंजलि योगसूत्र भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे स्तंभ हैं, जो मानव जीवन को न केवल दिशा प्रदान करते हैं, बल्कि व्यक्ति को उसकी पूर्णता की ओर अग्रसर करते हैं।